REVIEW OF RESEARCH
ISSN: 2249-894X
IMPACT FACTOR : 5.7631(UIF)
VOLUME - 12 | ISSUE - 1 | OCTOBER - 2022

मध्यवर्गीय जीवन की कशमकश और गुनाहों का देवता

डॉ. सुनील[1] , डॉ. लवलीन कौर[2]
[1]एसोसिएट प्रोफ़ेसर, हिन्दी-विभाग, गुरु नानक देव विश्वविद्यालय, अमृतसर-143005(पंजाब)
[2]सहायक प्रोफेसर, हिन्दी-विभाग, कन्या महाविद्यालय,जालंधर (पंजाब)

'गुनाहों का देवता' डॉ. धर्मवीर भारती की एक अनुपम औपन्यासिक कृति है जिसका प्रथम प्रकाशन 1959 ई. में हुआ| इस उपन्यास में कर्त्तव्य और भावना में उलझी प्रेमकथा के माध्यम से मध्यवर्गीय समाज की रूढ़िग्रस्तता को परत-दर-परत खोलते हुए समाजिक व्यवस्था के उस खोखले अहं को प्रस्तुत किया है जिसमें जान-प्राण की आहुति तो मान्य है लेकिन रसमों-रिवाजों की परम्परा को लांघना अवांछनीय हैं| यह उपन्यास अपने मखमली परिवेश में बड़ा ही मनोरम और करुणासिक्त है जिसमें सम-सामयिक संदर्भ धुप-छाँह की तरह आँख-मिचौली खेलते नज़र आते है; यही कारण है कि इसकी कथा इतनी रसमय बन पाई है और यह कृति इतनी लोकप्रिय| इलाहाबाद के नैसर्गिक सौन्दर्य से शुरू होती इसकी कथा चन्दर के 'गुनाहों का देवता' बनने के चर्मोत्कर्ष तक पहुँच जाने पर जिस कौतुहल और कसाव से गठित है वह अपने-आप में अनुपम है| वास्तव में यह एक प्रेम कथा है जिसका नायक चन्दर और नायिका सुधा है और दोनों के पारस्परिक बाह्य संबंधों के साथ ही उनके अन्तस् को परखने का उपक्रम लेखक ने किया है| उपन्यास इस प्रेम-गाथा के माध्यम से बहुत सारे व्यक्तिगत तथा समाजिक सापेक्ष प्रस्तुत करता है, जो निम्न मूल्यांकन हैं–

मध्यवर्गीय मानसिकता –

मध्यवर्गीय मानसिकता बनाम सामजिक अव्यवस्था कही जा सकती है | मध्यवर्ग समाज का वह वर्ग है जिसके पैर सामाजिक परम्पराओं, बन्धनों में पूरी तरह धंसे होते हैं और सिर उच्च वर्गीय आज़ाद सोच के स्वप्नों में हिलोरे लेता है|यही कारण है कि मध्यवर्ग को संबल नहीं मिलता| जिस तरह अव्यवसिथत समाज में कोई भी क्रिया व्यापार या मत-मतांतर सिथर होकर एक निश्चित मार्ग पर अग्रसर नहीं हो पाता, उसी प्रकार मध्यवर्गीय मानसिकता है जो सदैव सही और गलत के द्वंद्व में जकड़ी परम्पराओं के आगे झुकती है|इस उपन्यास का व्यक्तिगत परिवेश मध्यवर्गीय है | डॉ. शुकला प्रोफेसर है और सबसे अधिक दकियानूसी सोच रखते हैं| जाति व्यवस्था और उसके साक्ष्य में पनपती सांप्रदायिकता में वह स्वयं अपनी बेटी की बलि चढ़ा देते हैं| सुधा को पढ़ाया-लिखाया, सारी सुख-सुविधाएं दी लेकिन उसके जीवन के अहम फैसले (विवाह) पर अपनी कुलीन ब्राह्मणवादी सोच की परत चढ़ाकर उसकी भावनाओं का गला घोट दिया| एक पिता होकर भी उनकी आँख ने कभी सुधा और चन्द्र के रिश्ते को परखा ही नहीं और अगर तांक भी लिया होता तो शायद कभी राज़ी न होतेक्यूंकि जब चन्द्र कहता है की रोटी और बेटी की कैद में से रोटी की कैद तो टूट गई और अब बेटी की कैद भी टूट ही जाएगी अर्थात् जातिगत परिवेश नष्ट हो रहा है और ब्याह-शादियाँ भी स्वछंदता से होने लगेगीं तो डॉ शुकला प्रति-उत्तर में बड़ी चुसती से कहते हैं– **"अगर ऐसा होगा तो बहुत गलत होगा | इससे जातिगत पतन होता है | ब्याह-शादी को कम से कम मैं भावना की दृष्टि से नहीं देखता हूँ | यह एक सामाजिक तथ्य है |"1**कहना न होगा कि उपन्यासकार ने जाति-व्यवस्था के अंध-कूप में फँसी विद्वता को बड़ी सजगता से उघाड़ा है|

मध्यवर्गीय मानसिकता जाति-धर्म के आड़े नक्सलवाद और छुआछूत के गुहांधकार में भी फँसीदिखाई गई है जिसे मात्र मिथ्य बाह्याडम्बरों के अतिरिक्त और कुछ नहीं कहा जा सकता जैसे बुआ का पूजा से पहले पंचपात्र से पानी छिड़ककर ज़मीन फूँकना,चौके में चन्दर द्वारा सुधा की थाली छू लेने पर सुधा द्वारा खाने की थाली छोड़ देना, बुआ का डर कि बिनती गेसु के घर से कुछ खा-पी न ले इत्यादि सब भाईचारक सांझेदारी में नाकारात्मक तत्व हैं| डॉ. शुकला के संदर्भ में तो उपन्यासकार स्वयं कहता है- **"पार्टियों में मुसलमान और ईसाईयों के साथ खाने में उन्हें कोई एतराज नहीं था लेकिन कच्चा खाना वह चौके में, आसन पर बैठकर रेशमी धोती पहनकर खाते थे..... पूजा-पाठ, खान-पान, जात-पात के पक्के हामी लेकिन व्यक्तिगत जीवन में कभी यह नहीं सोचा कि उनका कौन शिष्य ब्राह्मण है, कौन बनिया, कौन खत्री, कौन कायस्थ |"2**

ततकालीन परिवेश में पनपती भेदभावी मानसिकता को डॉ भारती ने बड़ी सजगता से प्रस्तुत किया है | इसी तरह उपन्यास में मध्यवर्गीय स्त्री की स्थिति का खुलासा भी हुआ है बल्कि मध्यवर्गीय परिवेश की कसौटी पर स्त्री के विविध रूपों-स्वरूपों को रेखांकित किया गया है | साधारणत: मध्यवर्गीय नारी कम पढ़ी-लिखी और घरेलू स्तर की होती है | आर्थिक विषमता और अधिक्तर परम्परावादी विचार उसके उसके इस जीवन के लिए उत्तरदायी कहे जा सकते हैं| उसको मात्र ब्याह देने तक की एक बड़ी ज़िम्मेदारी मानी जाती है और इस अहम् फैसले पर उसको ज्यादा कुछ कहने का अधिकार नहीं दिया जाता| आज 21वी. शताब्दी में भी 50 से 60 प्रतिशत भारतीय नारी बाल-विवाह, अनमेल-विवाह, दहेज प्रथा, पर्दा प्रथा की जर्जरता में फँसी हुई हैं| प्रत्यक्ष तस्वीर के पीछे परोक्ष ढांचा अभी भी बहुत ज्यादा सुधार नहीं पा सका|

इस उपन्यास में नारी विषयक बहुत सी कुप्रथाओं को प्रस्तुत किया है जो उसके जीवन को दीमक की भांति चाट रहीहैं | सबसे पहले बुआ का बिनती के प्रति-व्यवहार लांछन- गालियाँ, पिता को खा जाने वाली; जाने क्या-क्या कहना एक तरफ यहाँ स्त्री के प्रति गंदली सोच को दिखाते हैं, वहीं दूसरी तरफ अंधविशवास, कुंठित घृणित मध्यवर्गीय सोच के भी परिचायिक हैं| विचारनीय तथ्य तो यह है कि अगर बिनती की जगह बिनती का भाई होता तो क्या माँ तब भी ऐसे ही बिगड़ती ? बिनती का (और सुधा का भी) छोटी उम्र में विवाह तथा बिनती के ससुराल वालों का दहेज का लोभ, सुधा को बुआ द्वारा विवाह के वक्त पर्दा करने को कहना इत्यादि कई प्रमाण उपन्यास में प्रस्तुत हुए हैं जो स्त्री को स्वतंत्र जीवन जीने ही नहीं देते| जैसे-"**सुधा का ब्याह अषाढ़ भर में निपटाय देव | अब अच्छा नहीं लागत | ठूँठ ऐसी बिटिया, सूनी माँग लिए छररावा करत है एहर ओहर|"3**

अथवा

"अंत में इस शर्त पर राजी हुए कि अगहन तक हर तीज-त्योहार पर ससुर के लिए कुरता-धोती का कपड़ा और ग्यारह रूपये का नज़राना और अगहन में अगर ब्याह हो रहा तो सास, नन्द और जेठानी के लिए गर्म साड़ी जायेगी और जब-जब दुबे जी गंगा नहाने प्रयागराज आयेंगे तो उनका रोचना, एक थाल, कपड़े और एक स्वर्ण मंडित जौ से होगा|"4

बिनती की बारात वापिस चली जाती है क्योंकि लड़का तन से आपाहिज होने के साथ-साथ उसकी और उसके परिवार वालों की मानसिकता भी आपाहिज थी | डॉ. साहब इस सब झूठ को बर्दाश्त नहीं कर पाते और बिनती को मडवे(फेरों) से उठा देते है | यहाँ बड़ी बेबाकता से डॉ. शुकला की परम्परावादी सोच को स्वार्थी होकर बदलते दिखाया| यथा वह कहते हैं - "**सचमुच जाति, विवाह सभी परम्पराएं बहुत ही बुरीबुरी तरह सड़ गयी है | इन्हें तो काट फेंकना चाहिए|"5**

तथा

"हम लोग जिन्दगी से दूर रहकर सोचते हैं कि हमारी सामजिक संस्थाएँ स्वर्ग है यह तो जब उनमें धँसो तब इनकी गंदगी मालूम होती है| चन्द्र तुम कोई और जाति का अच्छा-सा लड़का ढूंढो| मैं बिनती की शादी दूसरी बिरादरी में कर दूंगा|"6

लेकिन प्रेम-विवाह को लेकर अभी भी डॉ. शुकला के विचार नकारत्मक ही थे | उनका मानना था कि प्रेम विवाह में कभी भी मानसिक संतुलन नहीं बन पाता और शादियाँ टूट ही जाती है-"**मानसिक असंतुलन और प्रेम जितना अपने मन पर आधारित होता है उतना ही बाहरी परिस्थीयों पर| .....| और मैंने तो लव-मैरिजज को असफल होते ही देखा है |"7**

इस प्रकार बहुत सारे बदलते-बिसरते मध्यवर्गीय दृष्टिकोण को इस उपन्यास में प्रस्तुत हुए हैं जिनका भले ही कोई ओस्शोर नहीं है लेकिन जड़ बहुत मजबूत है|

2. **प्रेम और नैतिकता का प्रशन:-**

".....प्रेम एक तरह की बिमारी होती है है, मानसिक बीमारी, जो मौसम बदलने के दिनों में होती है, मसलन क्वार-कार्तिक या फागुन-चैत | उसका सम्बंध रीढ़ की हड्डी से होता है|"8 डॉ. हुकुमचन्द राजपाल इसी संदर्भ में लिखते हैं–**"रचना के आरम्भ में ही 'प्रेम की समस्या' की और संकेत किया गया है जो कि अंत तक(बिनती के हाथ तक) किसी न किसी रूप में बनी हुई है | वस्तुत: यह प्रेम का चक्र मध्यवर्गीय युवक-युवतियों में विशेष करवट लेता रहता है | व्यक्तिक जीवन की विशेषताएं, सामाजिक मर्यादा-भंग का भय, भविष्योन्मुखी जीवन के प्रति व्यामोह इत्यादि अनेक कारण इस प्रेम की असफला के मूल में रहते हैं | वस्तुत: यही प्रेम इस उपन्यास के कथ्य की धुरी है | प्रेम के वासनात्मक एवं उदात रूप के साथ ही इसी के संदर्भ में वैयक्तिक , पारिवारिक एवं सामजिक विघटन भी अनेक प्रसंगों में चित्रित हुआ है|"9**

उर्पयुक्त कथन के अनुरूप चन्द्र की बात करें तो उसके प्रेम में आदर्श त्याग और संयम है, इसी लिए वह एक कर्तव्यपरायण छात्र की भांति सुधा को विवाह के लिए विवश करता है जबकि वह जानता है सुधा उसके बिना नहीं रह पाएगी| दोनों का प्रेम ख्याली पुलाओं में न तो पनपता है और न ही आगे विकसित होता है बल्कि आदर्शों की वेदी पर चढ़कर दब जाता है, जिसकी भरपाई सुधा को अपनी प्राण देकर करनी पड़ती है | आदर्श कई बार लोगों की जिंदगियों का हनन् भी कर देते हैं और कई बार उन्हें शाश्वत अमर भी बना देते हैं|यह तय होता है परिसिथतियों पर | उपन्यास में प्रेम की असफला के कई उदाहरण दिखाये गये हैं – नायक-नायिका का असफल प्रेम, पम्मी का वासनात्मक प्रेम, बर्टी का प्रेमासिक्त पागलपन**,** गेसु का लक्ष्यार्थ प्रेम इत्यादि| केवल पम्मी के अतिरिक्त बर्टी, बिनती, रवीन्द्र बिसरिया, सुधा, चंद्र और गेसु सबका प्रेम मर्यादित है| बर्टी के प्रेम में समपर्ण है बिसरिया के प्रेम में स्वच्छता है, गेसु का प्रेम एकतरफा है लेकिन उसे जीवन का लक्ष्य प्रदान करता है, बिनती के प्रेम में पूजा अर्चना है, निर्मलता है और सुधा और चन्दर का प्रेम तो है ही पवित्र| लेकिन डॉ. भारती ने बड़ी सजगता से पम्मी के वासनामयी प्रेम को भी श्रेष्ठता प्रदान कर दी | इस संदर्भ में डॉ राजपाल कहते है –**"सुधा की मृत्यु होती है और चन्द्र का पतित व्यकितत्व सम्मुख आता है | पम्मी के बाहुपाश में चन्द्र अपनत्व को विस्मृत तक कर बैठता है| लेखक पत्नीत्व की सर्वोच्चता प्रतिष्ठित करवा अपने नैतिक आदर्श की रक्षा कर लेना चाहते है |" 10**

दूसरी तरफ पम्मी अपने पति के पास लौटकर चंदर को पत्र लिखती है और बड़ी कुशलता से अपने वास्नासिक्त प्रेम– अभियान को हिंदू विवाह रीति में समेटकर स्वयं को मुक्त कर लेती है**"प्यार से मेरा मन उठता जा रहा है, प्यार स्थाई नहीं होता | मैं ईसाई हूँ पर सभी अनुभवों के बाद पता लगता है कि हिंदुओं में यहाँ प्रेम नहीं वरन धर्म और सामाजिक परिस्थितियों के आधार पर विवाह की रीति बहुत वैज्ञानिक और नारी के लिए सबसे ज्यादा लाभदायक है | उसमें नारी को थोड़ा बंधन चाहे क्यों न हो लेकिन दायित्व रहता है, संतोष रहता है, वह अपने घर की रानी रहती है |"11**

अब पम्मी के कहने का तात्पर्य है कि पत्नीत्व स्थाई होता है और बाकी सब छलावा| कहना न होगा कि प्रेमजन्य उदात्त संकल्पों को जिस कौशल से प्रस्तुत किया गया है, वह किसी दर्शन (या फिलासफी) से कम नहीं और उपन्यास में उनका संजीव निर्वहण भी हुआ है| इसी तरह अन्य नैतिक मूल्यों की दृष्टि से भी यह उपन्यास बहुत महत्वपूर्ण रहा है| प्रेम के साथ – साथ, त्याग, संयम, कर्त्तव्य ,श्रद्धा , संयमता, समपर्ण इत्यादि सबकी यथाकथित उपन्यासकार ने रक्षा की है | कर्त्तव्य में कहीं -कहीं पलायनवादिता है लेकिन कथानक गढ़ते हुए उसके भी समेट दिया है| कहना न होगा कि असफल लेकिन आदर्शोन्मुखी प्रेम के साक्षय में नैतिक मूल्यों का संरक्षण कर उनकी उदात्ता को परिस्थितियों के दायरे में जिस प्रकार प्रस्तुत किया है, वह अद्वितीय है |

3. **युवा पीढ़ी का अंतर्द्वन्द्व**–

उपन्यास में अधिक्तर पात्र युवा पीढ़ी के हैं और उपन्यास के केन्द्रीय विषय प्रेम(और विवाह) को लेकर सबमें मतभेद भी है | सुधा के लिए प्रेम उसकी आस्था है, पूजा-अर्चना है, भक्ति है | वह अपने प्रेमी को देवता मानती है जो कभी कोई गलती नहीं कर सकता| वेह प्रेम में सर्वस्व न्यौछावर करने को आतुर है| कैलाश के साथ विवाह के पश्चात् भी वह मन से चन्दर की ही है | उसे चन्दर से अथाह प्रेम है, उसपर अटूट विश्वास है | सुधा के विवाह के बाद चन्दर जब पम्मी की वासना में गर्त हो जाता है तब भी वह अपनी ही कमज़ोरी समझती है और जब चन्द्र उसे कहता है कि किस बात का प्रायश्चित कर रही हो तो वह कहती है कि प्रायश्चित तो मैं वह अपनी दुर्बलताका कर रही है - "**दुर्बलता – चन्दर ! तुम्हें ध्यान होगा, एक दिन हम लोगों ने निश्चय किया था कि हमारे प्यार की कसौटी यह रहेगी चन्दर दूर रहकर भी हम लोग ऊँचे उठेंगे, पवित्र रहेंगे | दूर हो जाने के बाद चन्दर, तुम्हारा प्यार तो मुझमें एक दृढ़ आत्मा और विश्वास भरता रहा, इसी के सहारे मैं अपने जीवन के तूफानों को पार के ले गयी लेकिन पता नहीं मेरे प्यार में कौन-सी दुर्बलता रही कि**

तुम उसे ग्रहण नहीं कर पाये..... मैं तुमसे कुछ नहीं कहती| मगर अपने मन में कितनी कुंठित हूँ कि कह नहीं सकती| पता नहीं दूसरा जन्म होता है या नहीं लेकिन इस जन्म में तुम्हें पाकर तुम्हारे चरणों पर अपने को न चढ़ा पायी| तुम्हें अपने मन की पूजा में यकीन न दिला पायी, इससे बढ़कर और दुर्भाग्य क्या होगा ? मैं अपने व्यक्तित्व को कितना गर्हित: छिछला समझने लगी हूँ, चन्दर!"12 सुधा की इस बात से चंदर अंदर ही अंदर खिसिया जाता है| दोनों में प्रेम था लेकिन पीड़ा को सहने का मादा दोनों में अलग-अलग | सुधा विवाहोपरांत सब शारीरिक-मानसिक पीड़ाओं को झेलकर भी अपने देवता के प्रति श्रद्धा में तनिक कमी नहीं आने देती जबकि चंदर पम्मी की वासना का सम्बल पाकर अपने आप को आगे निकाल लेना चाहता है| **प्रो. सरिता शुकला – "मनु की तरह चंदर भी सुधा को खोकर बुद्धि की शरण में जाता है, पम्मी की मांसल करुना में डूब जाता है| त्याग और अलगाव के सिद्धांत को मानने वाला चंदर स्वयं उस रास्ते पर चलने में अपने आप को असमर्थ पाता है| वह ऊँचा तो नहीं उठता, पंक के गर्त में अवश्य गिर जाता है... |"13** कहना न होगा कि स्त्री के स्त्रीत्व की दृढ़ता को उपन्यासकार ने जितनी परिपक्विता से संजोया है, पुरुष के पौरुषत्व के अहं में उसकी छिछली मानसिकता को भी उतनी ही प्रौढ़ता से उघाड़ा है जो कभी झुकाव पसंदनहीं करती | इसी तरह पम्मी प्रेम की प्रौढ़ता को परिभाषित करके भी केवल मांसल नेह तक ही पहुँच पाती है और बर्टी प्रेम को सर्वोपरि सर्वस्व मानता हुआ प्रेम में मिले धोखे को सहन न करते हुए पागल हो जाता है|

विवाह एक सामाजिक संस्था और इस संस्था संबंधी भी युवाओं में विचार- वैविध्य दिखाया गया है | सुधा और चंदर आपस में विवाह नहीं करना चाहते थे और न ही कहीं ओर| वह दोनों अपने-अपने रिश्ते को पवित्रता से इसी तरह सालों-साल जीना चाते थे | यथा चंदर कहता है -**"नहीं सुधा शादी नहीं करनी है मुझे | मैंने देखा कि जिसकी शादी हुई कोई भी सुखी नहीं हुआ |"14** सुधा भी विवाह नहीं करना चाहती थी -**"मैं ब्याह नहीं करूँगी, कभी नहीं करूँगी | किसी से नहीं करूँगी | तुम सभी लोगों ने मिलकर मुझे मार डालने की ठानी है, तो मैं अभी सिर पटक कर मर जाती हूँ |"15**

दोनों में विवाह के प्रति नकारात्मकता इसलिए नहीं थी कि वह एक -दूसरे से विवाह कर सुखद भरपूर जीवन जीना चाहते थे बल्कि इसलिए थी क्योंकि वह अपने प्रेम को विवाह की सीमा में बांधकर उसका गला नहीं घोटना चाहते थे क्योंकि पम्मी जब सुधा से कहती है कि तुम चंदर से ब्याह करना चाहती हो तो भी सुधा कहती कि छि: मैने कभी ऐसा नहीं सोचा| लेकिन मध्यवर्गीय समाज की विवाह संस्था की बलि-वेदी पर चढ़ाकर उनके इस विचार को तहस-नहस कर दिया जाता है |

दूसरी तरफ पम्मी को विवाह से चिढ़ है| वह इसे एक बंधन मानती है| अपने पति से तलाक ले चुकी है और बर्टी के प्रेम और विवाह संबंध के टूटने को लेकर कहती है–**"मुझे शादी से नफरत है, शादी के बाद होने वाली आपसी धोखेबाजी से नफरत है और उस धोखेबाजी के बाद इस झूठमूठ की यादगार और बेईमानी के पागलपन से नफरत है|"16**

बिनती विवाह को मान देती है लेकिन उसकी मज़बूरी अलग है| गेसु अपने प्रेमी अख्तर को पति के रूप में न पाकर भी आजीवन अविवाहित रहने का फैसला लेती है और एकतरफा प्रेम का निर्वाह करती है| कहना न होगा कि इन सब युवाओं के प्रेम और विवाह संबंधों को भारती जी ने जिस सजगता से संजोया है, एक युग की गाथा ही कह डाली लगती है लेकिन इस सबसे गेसु काचरित्र जबर्दस्त सामर्थ्य को लिए हुए है | वह कहीं भी टूटती नहीं, गिरती नहीं वरन् जीवन को लक्ष्यार्थ बना लेती है| **डॉ. पुष्पा वासकर के विचारानुसार भी – "वास्तविक दुख और भक्ति मनुष्य के जीवन में शक्ति भर देते हैं, स्वत्व के प्रति आस्थावान बनाते हैं इस तथ्य का उदघाटन गेसु के माध्यम् से पर्याप्त मात्रा में हुआ है| परम्परावादी होकर भी वह आधुनिक है |"17**

'देवत्व' का छल और आस्थावान की निश्छलता - देवता.....? और वह भी गुनाहों का| नायक चन्दर देवता के चरित्र का प्रतिबिंब और नायिका सुधा निश्छल प्रेम और श्रद्धा की प्रतिछाया| दोनों पात्र एक ही सिक्के के दो पहलू – एक टास जीतकर भी खेल हार गया और दूसरा टास हारकर भी खेल जीत गया| पम्मी, बिनती और सुधा तीनों के जीवन से जुड़ा चंदर– सुधा उसकी चाहत थी लेकिन चाहत पूरी न हुई फिर अधूरेपन की पूर्ति करने के लिए पम्मी का उपभोग और दोनों के खालीपन को भरने के लिए बिनती से ब्याह | चंदर सबके जीवन में महत्वपूर्ण रहा लेकिन वह महज उसके व्यक्तिवादी अहं की तसल्ली थी| डॉ. भारती के ही शब्दों में **"..... विकलांग देवता ! वही स्वार्थी है जो अपने से ऊपर नहीं उठ पाता ! तेरे लिए अपनी एक सांस भी दूसरो के मन में तूफ़ान से भी ज्यादा महत्वपूर्ण रही है | तूने अपने मन की उपेक्षा के पीछे सुधा को भट्ठी में झोंक दिया| पम्मी के अस्वस्थ मन को पहचानकर भी उसके रूप का उपभोग करने में नहीं हिचका, बिनती को प्यार न करते हुए भी बिनती को तूने स्वीकार किया, फिर सबों का तिस्कार करते गया..... और कहता है तू स्वार्थी नहीं |"18** लेकिन इन सबों ने तुममें देवता का निर्वहन किया| यथा सुधा–

"मेरा देवता, मेरे नमन, मेरे पन्थ, मेरे प्रकाश!"19

बिनती – **"छि: चन्दर बाबू! आपकी आँखों में आंसू यह तो अच्छा नहीं लगता जितना पवित्रता औरऊँचाई से आपने सुधा के साथ निबाह किया है, यह तो शायद देवता भी नहीं कर पाते और दीदी ने आपको जैसा निश्छल प्यार दिया है उसको पाकर आदमी स्वर्ग से भी ऊँचा उठ जाता है,फौलाद से भी ज्यादा ताकतवर हो जाता है।"20**

गेसू भी उसे देवता से कम नहीं आंकती लेकिन पम्मी उसे स्वर्गभ्रष्ट देवता मानती हैवह उपभोग करके भी पुन: अपने पति के पास लौट जाती है लेकिन सुधा आजीवन चन्दर के बताये मार्ग को प्रशस्त करती है – सब मानसिक, शारीरिक दु:ख भोगकर भी चन्दर की आत्मिग्लानी को शब्दों के मायाजाल में बुनकर उसे फिर से निष्कपट, निस्वार्थी साबित करने की कोशिश करती है – **"मेरी पाप और पुण्य की तराजू ही दूसरी है। फिर कम-से-कम अब इतना देख-सुनकर मैं यह नहीं मानती कि शरीर की प्यास ही पाप है। नहीं चन्दर, शरीर की प्यास भी उतनी ही पवित्र और स्वाभाविक ही जितनी आत्मा की पूजा। आत्मा की पूजा और शरीर की प्यास दोनों अभिन्न हैं। आत्मा की अभिव्यक्ति शरीर से है, शरीर का संस्कार, शरीर का संतुलन आत्मा से है जो आत्मा और शरीरको अलग कर देता है, वही मन के भयंकर तूफानों में उलझकर चूरचूर हो जाता है। चन्दर, मैं तुम्हारी आत्मा थी। तुम मेरे शरीर थे। पता नहीं कैसे हम लोग अलग हो गये। तुम्हारे बिना मैं केवल सूक्ष्म आत्मा रह गयी। शरीर की प्यास, शरीर की रंगीनियाँ मेरे लिए अपरिचित हो गयीं। पति को शरीर देकर भी मैं संतोष न दे पायी..... और मेरे बिना तुम केवल शरीर रह गये। शरीर में डूब गये.... पाप का जितना हिस्सा तुम्हारा उतना ही मेरा..... पाप की वैतरणी के इस किनारे जब तक तुम तड़पोगे, तभी तक मैं भी तड़पूँगी..... दोनों में से किसी को भी चैन नहीं और कभी चैन नहीं मिलेगा....." 21** कहना न होगा कि चन्दर के देवत्व का छिछलापन और सुधा की प्रेम भक्ति की उदाता उपन्यास के नाम को सार्थक सिद्ध करते हैं जिससे लेखक ने स्वयं बड़ेबड़े प्रमाण देकर प्रस्तुत किया है।

निष्कर्षत:

कह सकते हैं कि उपन्यास में विभन्न व्यक्तिगत धारणाओं के ज़रीए मध्यवर्गीय समाज के बहुत सारे ऐसे सामाजिक बंधों कोखोला है जो इंसान के ज़िन्दगी से अधिक उसके जिंदा रहने से अधिक महत्वपूर्ण माने जाते हैं। बात चाहे रोटी और बेटी की आज़ादी की हो, हिंदु विवाह परम्परा व व्यवस्था की हो, नैतिक मूल्य - मान्यताओं एवं प्रेम विवाह की या फिर जातिधर्मगत भेदभाव की ; सबको उपन्यासकार ने मध्यवर्गीय यथार्थ से जोड़कर उनका मूल्यांकन भी किया है और परिमार्जन भी। यथा स्त्री और पुरुष के प्रेम को केवल विवाह का नाम देना ज़रूरी नहीं है दूर रहकर भी बड़ी पवित्रता से सम्बधों को जिया जा सकता है यथावत चन्दर कहता है-**".....क्या पुरुष और नारी के संबंध का एक ही रास्ता है – प्रणय, विवाह और तृप्ति। पवित्रता, त्याग और दूरी क्या संबंधों को विश्कसों को जिन्दा नहीं रहने सकता है....."22** दूसरी तरफ युवा पीढ़ी विवाह संस्था को अगर जीवन का केवल बंधन और धोखा मानकर इसका तिरस्कार करती है तो भी डॉ. भारती ने इस और परिष्कार करते हुए पम्मी के मुख से बड़ी समझदारी से कहलवा दिया है कि विवाह भारतीय संस्कृतिकी एक ऐसी संस्था है जो व्यक्ति को मानसिक सामाजिकसुरक्षा प्रदान कर उसके जीवन का विकास करती है बशर्ते कि दोनों की रजामंदी हो। जाति और वर्ण को भी इंसान तब तक निभाता है जब तक वह अपने झूठे अहं में जीता है लेकिन जब यही परम्पराएँ उसका जीनामुश्किल कर देती हैं तो अपने निजी स्वार्थ हेतु इन्हें काट फेंकने के लिए आतुर हो जाता है पूरे तौर पर अगर देखा जाये तो उपन्यास में उठाये गये विविध मुद्दे कहीं-न-कहीं जाकर व्यक्तिगत विचारों में प्रमाण और परिणाम पाकर एक तरफ मुख्य विषय 'प्रेम' की धुरी में ही सिमट गये और दूसरी तरफ देवता के व्यक्तिवादी अहं के तले दबकर अपनी परिभाषाही खो बैठे हैं लेकिन कुछ भी हो मध्यवर्गीय समाज की इस कशमकश को डॉ.भारती ने व्यक्ति और समाज के साक्ष्य में जिस प्रकार मूल्यांकित किया है वह अन्यथा दुर्लभ है

संदर्भिका

1. गुनाहों का देवता, धर्मवीर भारती, नयी दिल्ली : भारतीय ज्ञानपीठ, 2011, पृ – 45-46
2. वही, पृ – 41
3. वही, पृ – 70
4. वही, पृ – 73

5. वही, पृ – 187
6. वही, पृ – 187
7. वही ,पृ - 46
8. वही, पृ - 11
9. धर्मवीर भारती: साहित्य के विविध आयाम, हुकुमचन्द राजपाल, दिल्ली: विभ् प्रकाशन, पृ - 139
10. गुनाहों का देवता, धर्मवीर भारती , नयी दिल्ली: भारतीय ज्ञानपीठ, 2011 (64वां ससं), पृ - 139
11. वही, पृ - 210
12. वही, पृ - 228
13. धर्मवीर भारती: युग चेतना और अभिव्यक्ति, सरिता शुकला, कानपुर: चिंतन प्रकाशन, 2004,पृ – 278
14. गुनाहों का देवता, धर्मवीर भारती , नयी दिल्ली: भारतीय ज्ञानपीठ, 2011 (64वां ससं), पृ -54
15. वही, पृ -104
16. वही, पृ - 30
17. धर्मवीर भारती: व्यकित और साहित्यकार, पुष्पा वासकर, कानपुर: अलका प्रकाशन, 1987, पृ – 115-116
18. गुनाहों का देवता, धर्मवीर भारती , नयी दिल्ली: भारतीय ज्ञानपीठ, 2011 (64वां ससं), पृ – 215
19. वही,पृ - 177
20. वही, पृ - 102
21. वही, पृ - 231
22. वही, पृ - 118